ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

(A Monthly, Peer Reviewed Online Journal)

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 5, Issue 9, September 2018

प्राचीन भारत में पर्यावरण चेतना एवं संरक्षण

Dr. Seema Gupta

Associate Professor, History, Government Arts College, Kota, Rajasthan, India

सार

भौतिक विकास के पीछे दौड़ रही दुनिया ने आज जरा ठहरकर सांस ली तो उसे अहसास हुआ कि चमक-धमक के फेर में क्या कीमत चुकाई जा रही है. आज ऐसा कोई देश नहीं है जो पर्यावरण संकट पर मंथन नहीं कर रहा हो. भारत भी चिंतित है. लेकिन, जहां दूसरे देश भौतिक चकाचौंध के लिए अपना सबकुछ लुटा चुके हैं, वहीं भारत के पास आज भी बहुत कुछ है.पश्चिम के देशों ने प्रकृति को हद से ज्यादा नुकसान पहुंचाया है. पेड़ काटकर जंगल के कांक्रीट खड़े करते समय उन्हें अंदाजा नहीं था कि इसके क्या गंभीर परिणाम होंगे? प्रकृति को नुकसान पहुंचाने से रोकने के लिए पश्चिम में मजबूत परंपराएं भी नहीं थीं.प्रकृति संरक्षण का कोई संस्कार अखण्ड भारतभूमि को छोड़कर अन्यत्र देखने में नहीं आता है. जबकि सनातन परम्पराओं में प्रकृति संरक्षण के सूत्र मौजूद हैं. हिन्दू धर्म में प्रकृति पूजन को प्रकृति संरक्षण के तौर पर मान्यता है. भारत में पेड़-पौधों, नदी-पर्वत, ग्रह-नक्षत्र, अग्नि-वायु सहित प्रकृति के विभिन्न रूपों के साथ मानवीय रिश्ते जोड़े गए हैं. पेड़ की तुलना संतान से की गई है तो नदी को मां स्वरूप माना गया है. ग्रह-नक्षत्र, पहाड़ और वायु देवरूप माने गए हैं. प्राचीन समय से ही भारत के वैज्ञानिक ऋषि-मुनियों को प्रकृति संरक्षण और मानव के स्वभाव की गहरी जानकारी थी. वे जानते थे कि मानव अपने क्षणिक लाभ के लिए कई मौकों पर गंभीर भूल कर सकता है. अपना ही भारी नुकसान कर सकता है. इसलिए उन्होंने प्रकृति के साथ मानव के संबंध विकसित कर दिए. ताकि मनुष्य को प्रकृति को गंभीर क्षति पहुंचाने से रोका जा सके.यही कारण है कि प्राचीन काल से ही भारत में प्रकृति के साथ संतुलन करके चलने का महत्वपूर्ण संस्कार है. यह सब होने के बाद भी भारत में भौतिक विकास की अंधी दौड़ में प्रकृति पददलित हुई है. लेकिन, यह भी सच है कि यदि ये परंपराएं न होतीं तो भारत की स्थिति भी गहरे संकट के किनारे खड़े किसी पश्चिमी देश की तरह होती. हिन्दू परंपराओं ने कहीं न कहीं प्रकृति का संरक्षण किया है. हिन्दू धर्म का प्रकृति के साथ कितना गहरा रिश्ता है, इसे इस बात से समझा जा सकता है कि दुनिया के सबसे प्राचीन ग्रंथ ऋग्वेद का प्रथम मंत्र ही अग्नि की स्तुति में रचा गया है

परिचय

हिन्दुत्व वैज्ञानिक जीवन पद्धति है. प्रत्येक हिन्दू परम्परा के पीछे कोई न कोई वैज्ञानिक रहस्य छिपा हुआ है. इन रहस्यों को प्रकट करने का कार्य होना चाहिए. हिन्दू धर्म के संबंध में एक बात दुनिया मानती है कि हिन्दू दर्शन 'जियो और जीने दो' के सिद्धांत पर आधारित है. यह विशेषता किसी अन्य धर्म में नहीं है. हिन्दू धर्म का सह अस्तित्व का सिद्धांत ही हिन्दुओं को प्रकृति के प्रति अधिक संवेदनशील बनाता है. वैदिक वाङ्मयों में प्रकृति के प्रत्येक अवयव के संरक्षण और सम्वद्र्धन के निर्देश मिलते हैं.हमारे ऋषि जानते थे कि पृथ्वी का आधार जल और जंगल है. [1] इसलिए उन्होंने पृथ्वी की रक्षा के लिए वृक्ष और जल को महत्वपूर्ण मानते हुए कहा है- 'वृक्षाद् वर्षति पर्जन्य: पर्जन्यादन्न सम्भव:' अर्थात् वृक्ष जल है, जल अन्न है, अन्न जीवन है.जंगल को हमारे ऋषि आनंददायक कहते हैं- 'अरण्यं ते पृथिवी स्योनमस्तु' यही कारण है कि हिन्दू जीवन के चार महत्वपूर्ण आश्रमों में से ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास का सीधा संबंध वनों से ही है.

हम कह सकते हैं कि इन्हीं वनों में हमारी सांस्कृतिक विरासत का सम्वद्र्धन हुआ है. हिन्दू संस्कृति में वृक्ष को देवता मानकर पूजा करने का विधान है. वृक्षों की पूजा करने के विधान के कारण हिन्दू स्वभाव से वृक्षों का संरक्षक हो जाता है. सम्राट विक्रमादित्य और अशोक के शासनकाल में वन की रक्षा सर्वोपरि थी. चाणक्य ने भी आदर्श शासन व्यवस्था में अनिवार्य रूप से अरण्यपालों की नियुक्ति करने की बात कही है. हमारे महर्षि यह भली प्रकार जानते थे कि पेड़ों में भी चेतना होती है. इसलिए उन्हें मनुष्य के समतुल्य माना गया है. ऋग्वेद से लेकर बृहदारण्यकोपनिषद्, पद्मपुराण और मनुस्मृति सहित अन्य वाङ्मयों में इसके संदर्भ मिलते हैं. छान्दोग्यउपनिषद् में उद्दालक ऋषि अपने पुत्र श्वेतकेतु से आत्मा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि वृक्ष जीवात्मा से ओतप्रोत होते हैं और मनुष्यों की भाँति सुख-दु:ख की अनुभूति करते हैं.

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

(A Monthly, Peer Reviewed Online Journal)

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 5, Issue 9, September 2018

हिन्दू दर्शन में एक वृक्ष की मनुष्य के दस पुत्रों से तुलना की गई है-

'दशकूप समावापी: दशवापी समोह्रद:।
दशह्रद सम:पुत्रो दशपत्र समोद्रुम:।।

घर में तुलसी का पौधा लगाने का आग्रह भी हिन्दू संस्कृति में क्यों है? यह आज सिद्ध हो गया है. तुलसी का पौधा मनुष्य को सबसे अधिक प्राणवायु ऑक्सीजन देता है. तुलसी के पौधे में अनेक औषधिय गुण भी मौजूद हैं. पीपल को देवता मानकर भी उसकी पूजा नियमित इसीलिए की जाती है क्योंकि वह भी अधिक मात्रा में ऑक्सीजन देता है.

परिवार की सामान्य गृहिणी भी अपने अबोध बच्चे को समझाती है कि रात में पेड़-पौधे को छूना नहीं चाहिए, वे सो जाते हैं, उन्हें परेशान करना ठीक बात नहीं. वह गृहिणी परम्परावश ऐसा करती है. उसे इसका वैज्ञानिक कारण नहीं मालूम. रात में पेड़ कार्बन डाइ ऑक्सीजन छोड़ते हैं, इसलिए गांव में दिनभर पेड़ की छांव में बिता देने वाले बच्चे-युवा-बुजुर्ग रात में पेड़ों के नीचे सोते नहीं हैं.देवों के देव महादेव तो बिल्व-पत्र और धतूरे से ही प्रसन्न होते हैं. यदि कोई शिवभक्त है तो उसे बिल्वपत्र और धतूरे के पेड़-पौधों की रक्षा करनी ही पड़ेगी. [2] वट पूर्णिमा और आंवला ग्यारस का पर्व मनाना है तो वटवृक्ष और आंवले के पेड़ धरती पर बचाने ही होंगे. सरस्वती को पीले फूल पसंद हैं. धन-सम्पदा की देवी लक्ष्मी को कमल और गुलाब के फूल से प्रसन्न किया जा सकता है. गणेश दूर्वा से प्रसन्न हो जाते हैं. हिन्दू धर्म के प्रत्येक देवी-देवता भी पशु-पक्षी और पेड़-पौधों से लेकर प्रकृति के विभिन्न अवयवों के संरक्षण का संदेश देते हैं.

जलस्रातों का भी हिन्दू धर्म में बहुत महत्व है. ज्यादातर गांव-नगर नदी के किनारे पर बसे हैं। ऐसे गांव जो नदी किनारे नहीं हैं, वहां ग्रामीणों ने तालाब बनाए थे. बिना नदी या ताल के गांव-नगर के अस्तित्व की कल्पना नहीं है. हिन्दुओं के चार वेदों में से एक अथर्ववेद में बताया गया है कि आवास के समीप शुद्ध जलयुक्त जलाशय होना चाहिए. जल दीर्घायु प्रदायक, कल्याणकारक, सुखमय और प्राणरक्षक होता है. शुद्ध जल के बिना जीवन संभव नहीं है. यही कारण है कि जलस्रोतों को बचाए रखने के लिए हमारे ऋषियों ने इन्हें सम्मान दिया. पूर्वजों ने कल-कल प्रवाहमान सरिता गंगा को ही नहीं वरन सभी जीवनदायनी नदियों को मां कहा है. हिन्दू धर्म में अनेक अवसर पर नदियों, तालाबों और सागरों की मां के रूप में उपासना की जाती है. छान्दोग्योपनिषद् में अन्न की अपेक्षा जल को उत्कृष्ट कहा गया है. महर्षि नारद ने भी कहा है कि पृथ्वी भी मूर्तिमान जल है. अन्तरिक्ष, पर्वत, पशु-पक्षी, देव-मनुष्य, वनस्पति सभी मूर्तिमान जल ही हैं. जल ही ब्रह्मा है. महान ज्ञानी ऋषियों ने धार्मिक परंपराओं से जोड़कर पर्वतों की भी महत्ता स्थापित की है.

देश के प्रमुख पर्वत देवताओं के निवास स्थान हैं. अगर पर्वत देवताओं के वासस्थान नहीं होते तो कब के खनन माफिया उन्हें उखाड़ चुके होते. विन्ध्यगिरि महाशक्तियों का वासस्थल है, कैलाश महाशिव की तपोभूमि है. हिमालय को तो भारत का किरीट कहा गया है. महाकवि कालिदास ने 'कुमारसम्भवम्' में हिमालय की महानता और देवत्व को बताते हुए कहा है- 'अस्तुस्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराज:.' भगवान श्रीकृष्ण ने गोवर्धन की पूजा का विधान इसलिए शुरू कराया था क्योंकि गोवर्धन पर्वत पर अनेक औषधि के पेड़-पौधे थे, मथुरा के गोपालकों के गोधन के भोजन-पानी का इंतजाम उसी पर्वत पर था. मथुरा-वृन्दावन सहित पूरे देश में दीपावली के बाद गोवर्धन पूजा धूमधाम से की जाती है.

इसी तरह हमारे महर्षियों ने जीव-जन्तुओं के महत्व को पहचानकर उनकी भी देवरूप में अर्चना की है. मनुष्य और पशु परस्पर एक-दूसरे पर निर्भर हैं. हिन्दू धर्म में गाय, कुत्ता, बिल्ली, चूहा, हाथी, शेर और यहां तक की विषधर नागराज को भी पूजनीय बताया है. प्रत्येक हिन्दू परिवार में पहली रोटी गाय के लिए और आखिरी रोटी कुत्ते के लिए निकाली जाती है. चींटियों को भी बहुत से हिन्दू आटा डालते हैं. चिडिय़ों और कौओं के लिए घर की मुंडेर पर दाना-पानी रखा जाता है. पितृपक्ष में तो काक को बाकायदा निमंत्रित करके दाना-पानी खिलाया जाता है.[3,4]

इन सब परम्पराओं के पीछे जीव संरक्षण का संदेश है. हिन्दू गाय को मां कहता है. उसकी अर्चना करता है. नागपंचमी के दिन नागदेव की पूजा की जाती है. नाग-विष से मनुष्य के लिए प्राणरक्षक औषधियों का निर्माण होता है. नाग पूजन के पीछे का रहस्य ही यह है. हिन्दू धर्म का वैशिष्ट्य है कि वह प्रकृति के संरक्षण की परम्परा का जन्मदाता है. हिन्दू संस्कृति में प्रत्येक जीव के कल्याण का भाव है. हिन्दू धर्म के जितने भी त्योहार हैं, वे सब प्रकृति के अनुरूप हैं. मकर संक्रान्ति, वसंत पंचमी, महाशिव रात्रि, होली,

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

(A Monthly, Peer Reviewed Online Journal)

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 5, Issue 9, September 2018

नवरात्र, गुड़ी पड़वा, वट पूर्णिमा, ओणम्, दीपावली, कार्तिक पूर्णिमा, छठ पूजा, शरद पूर्णिमा, अन्नकूट, देव प्रबोधिनी एकादशी, हरियाली तीज, गंगा दशहरा आदि सब पर्वों में प्रकृति संरक्षण का पुण्य स्मरण है.

विचार-विमर्श

प्रकृति और मानव का अटूट संबंध सृष्टि के निर्माण के साथ ही चला आ रहा है। धरती सदैव ही समस्त जीव-जन्तुओं का भरण-पोषण करने वाली रही है। 'क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा, पंच रचित अति अधम सरीरा ।' इन पाँच तत्वों से सृष्टि की संरचना हुई है। बिना प्रकृति के जीवन की कल्पना ही नही की जा सकती। भौतिक युग में जहां विकास के नाम पर मानव ने प्रकृति के सुंदर स्वरूप को क्षति पहुंचा पर्यावरण को ही चुनौती देकर अपने जीवन को ही संकट में डाल दिया है।इस स्थिति में पर्यावरण की सुरक्षा के लिए जागरूकता फैलाना अति आवश्यक हो गया है। इसी उद्देश्य से प्रत्येक वर्ष 5 जून को विश्व पर्यावरण दिवस मनाया जाता है। 1972 में संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा पर्यावरण सम्मेलन आयोजित किया गया था। लेकिन विश्व स्तर पर इसकी शुरुआत 5 जून 1974 को स्वीडन की राजधानी स्टॉक होम में हुई थी। जिसमे 119 देशों ने भाग लिया था। प्रत्येक वर्ष एक थीम निर्धारित की जाती है उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वर्ष भर कार्य किया जाता है।वर्तमान की थीम 'पारिस्थितिकी तंत्र की बहाली (Ecosystem Restroration) निर्धारित की गई है। जिसके अंतर्गत वृक्षारोपण कर उन्हें संरक्षित करना, बागान तैयार करना, नदियों की साफ-सफाई करना, इत्यादि पर्यावरण संरक्षण के लिए नए तरीकों को अपनाकर काम किया जाना है ताकि हमारी धरती प्रदूषण रहित हो। इसमें रहने वाले जीव-जंतुओं को सुरक्षित रखा जा सके। मनुष्य को शुद्ध वायु,जल प्राप्त हो सके।

वैसे पर्यावरण शब्द कोई प्राचीन शब्द नहीं है, अंग्रेजी में इसके लिए इन्वायरमेंट शब्द का प्रयोग किया जाता है। इनवायरमेंट शब्द भी अधिक प्राचीन नहीं है। जर्मन जीव विज्ञानी अर्नेस्ट हीकल द्वारा इकॉलॉजी शब्द का प्रयोग 1869 में किया गया, जो ग्रीक भाषा के ओइकोस (गृह या वासस्थान) शब्द से उद्धृत है। यह शब्द पारिस्थितिकि के अंग्रेजी पर्याय के रुप में प्रचलित हुआ है। सर्व प्रथम डॉ रघुवीर ने तकनीकि शब्द निर्माण के समय इन्वायरमेंट (फ्रेंच भौतिकी शब्द) के लिए पर्यावरण शब्द का प्रयोग किया है, वे ही इस शब्द के प्रथम प्रयोक्ता है। इससे पूर्व प्राचीन साहित्य में परिधि, परिभू, परिवेश, मण्डल इत्यादि शब्दों का प्रयोग हुआ है।वर्तमान में वैश्विक महामारी कोरोना के संकट से सम्पूर्ण विश्व संघर्ष कर रहा है। इस महामारी से जहां एक ओर मनुष्य के प्राण संकट में पड़ गए , संसार गतिहीन हो गया है, वहीं दूसरी ओर मनुष्यों का प्रकृति में हस्तक्षेप बन्द हो जाने से प्रकृति ने पुनः स्वयं को संवारना प्रारंभ कर दिया। नदियाँ स्वच्छ हो गईं, प्रदूषण कम हो गया। इस महामारी ने समस्त मानवजाति को एक सबक सिखा दिया कि प्रकृति और पर्यावरण की सभी प्राणियों जीवन के लिए कितनी महत्वपूर्ण है। इस महामारी से उबरने के बाद पुनः संसार गतिशील हो विकासोन्मुख होगा परन्तु उन तरीको से जिनसे प्रकृति एवं पर्यावरण क्षतिग्रस्त न हो।आज जहां पर्यावरण संरक्षण के लिए लोगों में जागरूकता फैलाने के लिए विश्व में एक दिवस निर्धारित किया गया है जिसे पर्व के रूप में मनाया जाता है। वहीं भारतीय परंपराएँ सनातन काल से ही पर्यावरण को संरक्षित एवं सुरक्षित करने के लिए ही विकसित की गईं थीं। भारतीय संस्कृति सदैव ही प्रकृति और पर्यावरण के महत्व एवं संरक्षण के प्रति सदैव ही जागरूक रही है। पर्यावरण के प्रति अगाध प्रेम व समर्पण की भावना हमारे धार्मिक ग्रन्थोंवेद, पुराणों, उपनिषद, रामायण, रामचरित मानस, महाभारत एवं लोक साहित्य में परिलक्षित होती है। हमारे मनीषियों ने पर्यावरण के संरक्षण-संवर्धन को विशेष महत्व दिया है।[5,6]

भारत में प्रत्येक भाषा-साहित्य में प्रकृति से जुड़े प्रत्येक तत्वों का बड़ी सूक्ष्मता और सुंदरता के साथ वर्णित करते हुए, उसे देवतुल्य मानकर उसकी उपासना की गई है। यहां पंच महाभूत अग्नि, जल, वायु, पृथ्वी, आकाश के साथ ग्रह-नक्षत्र, नदियां, तालाबों, पर्वत, पेड़-पौधों, जीव-जंतुओं सभी में ईश्वरीय सत्ता को स्वीकारते हुए उनके प्रति आदर-सम्मान की भावना परिलक्षित होती है। भारतीय परंपराओं में पर्यावरण अभिन्न अंग रहा है। प्रत्येक परम्पराओं के पीछे एक वैज्ञानिक तथ्य जुड़ा है।वेदों को सृष्टि विज्ञान का प्रमुख ग्रंथ माना गया है। वेदों में पर्यावरण संतुलन के महत्व को प्रतिपादित करते हुए जल, वायु, अग्नि, पृथ्वी का स्तवन अनेक स्थलों में किया गया है। अग्नि को पिता के समान कल्याणकारी कहा गया है। 'अग्ने। सूनवे पिता इव नः स्वस्तये आ सचस्व' ऋग्वेद का प्रथम मंत्र ही अग्नि तत्व के स्तवन से होता है। ऋग्वेद(1.23.248)में जल के महत्व को इस प्रकार बताया गया है -'अप्सु अन्त:अमृतं, अप्सु भेषजं' अर्थात जल में अमृत है,जल मेंऔषधि गुण विद्यमान रहते हैं अस्तु, आवश्यकता है जल की शुद्धता, स्वच्छता बनाये रखने की । ऋग्वेद(1,555,1976) के ऋषि का आशीर्वादात्मक उद्गार है–'पृथ्वी:पू:च उर्वी भव -अर्थात समग्र पृथ्वी संपूर्ण परिवेश परिशुद्ध रहे, नदी, पर्वत, वन, उपवन सब स्वच्छ रहें, गांव, नगर सबको विस्तृत और उत्तम परिसर प्राप्त हों तभी जीवन का सम्यक विकास हो सकेगा।यजुर्वेद में यज्ञ विधियां एवं यज्ञ में प्रयोग किये जाने वाले मंत्र हैं। यज्ञ स्वयं एक चिकित्सा है। यज्ञ वायु मंडल को शुद्ध कर रोगों और महामारियों को दूर करता है। अथर्ववेद में आयुर्वेद का अत्यंत महत्व है। अनेक प्रकार की चिकित्सा पद्धति एवं जड़ी बूटियां तथा शल्य चिकित्सा व विभिन्न रोगों का वर्णन है। सामवेद में ऐसे मंत्र मिलते है जिनसे ये प्रमाणित होता है कि वैदिक ऋषियों

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

(A Monthly, Peer Reviewed Online Journal)

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 5, Issue 9, September 2018

को ऐसे वैज्ञानिक सत्यों का ज्ञान था जिनकी जानकारी आधुनिक वैज्ञानिकों को सहस्राब्दियों बाद प्राप्त हो सकी। वेदों के पश्चात रामायण और रामचरित मानस की बात करें तो महर्षि वाल्मीकि एवं तुलसीदास जी ने मनुष्य के जीवन को सात्विक और सुंदर बनाने के लिए प्राकृतिक पर्यावरण की विशुद्धता पर विशेष बल दिया है तभी मानव जीवन आनंदकारी हो सकेगा। इन्होंने प्राकृतिक अवयवों को उपभोग की वस्तु नहीं मानते हुए समस्त जीवों और वनस्पतियों के बीच अटूट प्रेम सम्बन्ध भी स्थापित किया है।तुलसीदास ने वनों की सुंदरता व उपयोगिता के साथ वन्य जीवों के परस्पर संबंध का वर्णन इसप्रकार किया है–

फूलहिं फलहिं सदा तरु कानन,रहहिं एक संग जग पंचानन।
खग मृग सहज बयरु बिसराई, सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई।।
पर्यावरण संरक्षण को महत्व देते हुए तुलसीदास लिखते हैं, –
रीझि-खीझि गुरुदेव सिष सखा सुविहित साधू।
तोरि खाहु फल होई भलु तरु काटे अपराधू।।

अर्थात् तुलसीदास ने वृक्ष से फल खाना तो उचित माना, लेकिन वृक्ष को काटना अपराध माना है।

वृक्षारोपण की परंपरा भी स्वाभाविक है जो प्राचीन काल से चली आ रही है। भगवान रामचंद्र जी के विवाह पश्चात राज्याभिषेक की तैयारी के अवसर पर गुरु वशिष्ठ ने आदेश दिया –

"सफल रसाल पूगफल केरा,रोपहु बीथिन्ह पुर चहुँ फेरा ।"

श्रीराम ने भी 14 वर्ष के वनवास को अपने सौभाग्य के कारण माना जो उनके प्रकृति प्रेम को इंगित करता है। वनवास काल में सीता जी एवं लक्ष्मण ने भी वृक्षारोपण किया – "तुलसी तरुवर विविध सुहाए, कहुँ कहुँ सियँ कहुँ लखन लगाए। अयोध्या नगरी में सभी ने सुमन वाटिकाएँ, लताएँ आदि लगाई हैं। नीचे के उदाहरण में सबहिं शब्द विशेष महत्त्व का है अर्थात रोपण सभी को करना है उसका आकार, प्रकार जैसा भी हो।[7,8]

सुमन वाटिका सबहिं लगाईं। विविध भाँति करि जतन बनाई।।
लता ललित बहु जाति सुहाईं। फूलहिं सदा बसन्त की नाईं।।

रामचरित मानस के सुंदरकांड में लंका के प्राकृतिक सौंदर्य एवं पर्यावरण के सुव्यवस्थित स्वरूप का चित्रण इस प्रकार है-

"बन बाग उपबन बाटिका सर कूप बापीं सोहहिं"। रामचरित मानस में पर्यावरण के महत्व व संरक्षण के साथ मानव के अटूट संबंध को दर्शाया गया है।रामायण कालीन ग्रंथों में सजीव-निर्जीव दोनों तत्वों को चेतना सम्पन्न बताया गया है। वाल्मीकि जी ने रामायण में प्रकृति के मनोरम दृश्यों का वर्णन किया है। ऋषि मुनियों के आश्रम हरियाली युक्त थे जिनमें जीव-जन्तु एवं,पशु-पक्षियों का समूह स्वच्छन्द विचरण करते थे। महाभारत काल मे भी मनीषियों ने पर्यावरण की महिमा का गान किया है। भगवान श्रीकृष्ण का बाल्यकाल प्रकृति की गोद में बीता। उन्होंने तो पग-पग पर पर्यावरण संरक्षण के संकेत दिए।हमारे ऋषि मुनियों ने पृथ्वी का आधार ही जल और जंगल को माना है- **"वृक्षाद वर्षन्ति पर्जन्य: पर्जन्यादन्न संभव:"**अर्थात वृक्ष जल है ,जल अन्न है ,अन्न जीवन है। जंगल को आनन्ददायक कहते हैं।सम्राट विक्रमादित्य, चन्द्रगुप्त मौर्य, सम्राट अशोक के शासनकाल में भी वन्य जीवों एवं वनों के संरक्षण पर विशेष बल दिया गया। आचार्य चाणक्य ने तो आदर्श शासन व्यवस्था के लिए अनिवार्य रूप से अरण्य पालों की नियुक्ति करने की बात कही है। हिन्दू धर्म व जीवन में चार आश्रम निर्धारित हैं जिनमे से ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और सन्यास का सीधा संबंध वनों से माना गया है। वृक्षों को देवता मानकर पूजने से उनका संरक्षण भी हो जाता है। मत्स्य पुराण में वृक्ष की तुलना मनुष्य के दस पुत्रों से की गई है।[9]

"दशकूप समावापी: दशवापी समोह्रद:
दशह्रद सम:पुत्रो, दशपुत्र समोद्रुम:"।

पर्यावरणीय तत्वों में समन्वय होना ही सुख शांति का आधार है। दूसरे शब्दों में पदार्थों का परस्पर समन्वय ही शांति है। प्राकृतिक पदार्थों में शांति की वैदिक भावना है कि – "शं न उरुची भवतु स्वधाभि:। ऋग्वेद 7,35,3 (अन्नादि से युक्त पृथिवी हमारी शांति के लिए हो।) स्योना पृथिवी नो भवानृक्षरा निवेशनी यच्छा न: शर्म सप्रथा:। यजुर्वेद 36, 13 (पृथिवी हमारे लिए कंटक रहित और बसने योग्य हो।) प्रकृति के दोहन, शोषण से मनुष्यों ने प्रकृति के नियमों की अवहेलना कर समस्त प्राणियों के जीवन को संकट में डाल

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

(A Monthly, Peer Reviewed Online Journal)

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 5, Issue 9, September 2018

दिया है। परिणामस्वरूप प्राकृतिक आपदाओं के रूप में प्रकृति दंड देने से नहीं चूकती है।वैदिक साहित्य में प्राकृतिक पदार्थों से कल्याण की कामना को स्वस्ति कहा गया है, जिसका आचार्य सायण "अविनाशं क्षेमं-सुरक्षित क्षेम" अर्थ किया है। इस नैरुक्त चिंतन है – अलब्धस्य लाभो योग:, प्राप्तस्य संरक्षणं क्षेम: – अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति योग है तथा प्राप्त का संरक्षण क्षेम। अत: सहज सुलभ प्राकृतिक पदार्थों का सुरक्षित रहना ही स्वस्ति है।इसीलिए हमारे मनीषियों नेउद्घोष किया है – "ॐ द्यौ शान्ति:, अंतरिक्ष शांति:, पृथ्वी शांति:, आप:शांति:।" अतः मनुष्य को अपने मन ,वचन और आचरण एवं व्यवहार से प्रकृति के कोप को शांत करके ही अपना जीवन सुखी और शांत बना सकता है।[10]

परिणाम

भारतीय संस्कृति में पर्यावरण को दैवतुल्य स्थान प्राप्त है। भारतीय संस्कृति में वेदों, पुराणों, धार्मिक ग्रन्थों को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। आदिम सभ्यता से ही प्रकृति के विविध रूपों यथा - सूर्य, चन्द्रमा, धरती, नदी, पर्वत, पीपल, गाय, बैल आदि की पूजा का विधान भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग रहा है। पर्यावरण मनुष्य की जीवनदायिनी सत्ता है। भारतीय संस्कृति में भौगोलिक, खगोलीय एवं प्राकृतिक पर्यावरण की चिंता के साथ नैतिक एवं आध्यात्मिक पर्यावरण के प्रति भी विशेष ध्यान दिया गया है। हमारे मूलभूत संस्कारों में, धर्म में ऐसे पवित्र विचारों को शामिल कर दिया गया है कि हम स्वतः मानसिक, वाचिक एवं कायिक सुचिता का व्यवहार करें। प्रकृति तत्वों के साथ हमने रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करके उन्हें अपने व्यक्तित्व के साथ पूरी तरह जोड़ लिया है। पर्यावरण का अर्थ है - जीवन को संरक्षण प्रदान करने वाला कवच अर्थात् हमारे चारों ओर का आवरण। पर्यावरण संरक्षण से अभिप्राय है कि हम अपने चारों ओर के आवरण को संरक्षित करें तथा उसे अनुकूल बनाए। पर्यावरण और प्राणी एक-दूसरे पर आश्रित है। [8,9]यही कारण है कि भारतीय चिन्तन परंपरा में पर्यावरण संरक्षण की अवधारणा उतनी ही प्राचीन है, जितना यहाँ मानव जाति का ज्ञात इतिहास है। आदिवासियों के संदर्भ में जल, जंगल, ज़मीन का महत्व आज भी नज़र अन्दाज़ नहीं किया जा सकता। सृष्टि में प्राणी-मात्र का जीवन प्रकृति के बिना असम्भव प्रायः है। प्राकृतिक असन्तुलन के कारण बढ़ते तापमान से हिमखण्ड पिघल रहे हैं। ग्लोबल वार्मिंग की भयावह स्थिति से पूरा विश्व आंतकित है, जिसका निवारण आज एक चुनौतीपूर्ण कार्य बन गया है। वर्तमान समय में दुनिया की सबसे भयावह स्थितियों में एक है पर्यावरण प्रदूषण। जिस धरती ने मनुष्य को जन्म दिया, वहीं मनुष्य आज इसे नष्ट करने को आतुर है। पर्यावरण प्रदूषण की समस्या आज सम्पूर्ण विश्व की समस्या है। प्राचीन भारतीय ऋषि, मनीषियों ने इस समस्या को पूर्व में ही स्पष्ट कर दिया था। यद्यपि उस समय प्रदूषण की समस्या नहीं थी, [6,7]तथापि उन्हें आने वाले समय का आभास अवश्य हो गया था। भारतीय मनीषा सृष्टि के प्रारम्भ से ही प्राणीमात्र के कल्याणार्थ सतत् जागरूक एवं चिन्तनशील रही है, यही हमारी भारतीय संस्कृति का मूल उद्घोष एवं आदर्शवाक्य भी है:-

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद दुःखभाग भवेत॥

अर्थात् यहाँ सभी सुखी एवं स्वस्थ्य हों, यही कामना की गई है। समान्यतः पर्यावरण के अर्न्तगत प्रकृतिजन्य सभी तत्व- आकाश, जल, वायु, अग्नि, ऋतुएँ, पर्वत, नदियाँ, सरोवर, वृक्ष, वनस्पति, जीव-जन्तु, ग्रह, नक्षत्र, दिशाएँ एक तरह से अखिल ब्रह्माण्ड ही सम्मिलित हो जाता है।

संस्कृति एवं पर्यावरणः अर्थ, परिभाषाः -

संस्कृति शब्द सम् उपसर्ग कृ धातु तिन् प्रत्यय के योग से बना है जिसका अर्थ है सुधारना, सुन्दर बनाना, पूर्ण बनाना। 'परि' एवं 'आ' उपसर्गपूर्वक "वृञ्" धातु से ल्युट (अन्) के योग से निष्पन्न पर्यावरण शब्द का अर्थ है - "परितः आवरणम्" अर्थात् चारों ओर से व्याप्त आवरण (घेरा) या वातावरण। यह वह वातावरण है जिसे हम प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से उपभोग करते हैं। आवरण का शाब्दिक अर्थ हैं - ढकना, छिपना, घेरना, चारदीवारी आदि। भारतीय संस्कृति में पर्यावरण शब्द का प्रयोग परिधि और परिवेश के रूप में प्राचीन काल से होता रहा है।[4,5]

पर्यावरण को निम्नवत परिभाषित किया गया है -

(1) डॉ. बद्रीनाथ कपूर वैज्ञानिक परिभाषा देते हैं:-

"आस-पड़ोस की परिस्थितियाँ और उसके प्रभाव से समीकृत करते हैं। "परि" संस्कृत का उपसर्ग है जिसका अर्थ अच्छी तरह से और आच्छादन भी है।"

(2) डॉ. उर्मिला श्रीवास्तव के अनुसार:-

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

(A Monthly, Peer Reviewed Online Journal)

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 5, Issue 9, September 2018

"परि" तथा "आ" उपसर्गपूर्वक 'वृञ्' (वरणे) धातु से ल्युट् (अन्) प्रत्यय लगाकर निष्पन्न शब्द पर्यावरण जीवों की अनुक्रियाओं की जैविक, रासायनिक और भौतिक परिस्थितियों का योग हैं जो स्वयं शुद्ध तथा अनुशासित है।"
(3) यजुर्वेद में पर्यावरण की परिभाषा दी गई हैं:-

"परितः आवृणोतित पर्यावरणम्" जो चारों ओर से आवृत करता है वही पर्यावरण है।

प्राचीन भारत में पर्यावरण की समस्या वर्तमान की तरह विकराल नहीं थी। उस समय अगर प्रदूषण नाममात्र भी रहा हो, तो प्राचीन चिन्तक और साहित्यकार अत्यन्त सजग थे। भारतीय संस्कृति के संस्कृत साहित्य में एक कहावत प्रसिद्ध हैं कि - "प्रक्षालानादि पऽस्य दूरादस्पर्शनं वरम्।" अर्थात् पैर को कीचड़ में सानकर फिर से धोने से अच्छा है कि पैर में कीचड़ लगने ही न दिया जाए। यह वाक्य प्रदूषण निषेध की ओर संकेत करता है।[3,4]

पंचतत्व:- पंचतत्व का संतुलन न रहना ही पर्यावरण प्रदूषण माना जाता है। मानव जीवन को भी यह प्रभावित करते हैं। तुलसीदास जी ने स्पष्ट कहा है - "क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा। पंचरहित यह अधम शरीरा॥" अर्थात् जो ब्रह्माण्ड में है वही शरीर में है, ब्रह्माण्ड बिगड़ेगा तो शरीर भी बिगड़ेगा। वैदिक ऋषि मनीषियों ने सर्वप्रथम पर्यावरण पर चिन्तन मनन करते हुए सृष्टि को प्रारम्भ अवस्था में जिस प्रकार देखा उसका वर्णन ऋग्वेद की ऋचाओं में इस प्रकार किया है -

"नासदासीनों सदासीतदानी, हिरण्यगर्भा समवर्ततााग्रे।"

अर्थात् संसार में पहले न सद् न असद् था, केवल जल ही जल विद्यमान था। इसके हिरण्यगर्भ रूपी ईश्वर ही सर्वप्रथम प्रगट हुए, तभी संसार अस्तित्व में आया। विज्ञान के अनुसार प्रकृति सदैव तीन रूपों में विद्यमान रहती हैं कण, प्रतिकण, विकरण। वैदिक सिद्धांत के अनुसार प्रकृति के मूल तीन वर्ग- त्रयःकृण्यति भूवनस्यरेता विद्यमान है।[2,3]

भारतीय संस्कृति में पर्यावरण चिन्तन की अवधारणा उतना ही प्राचीन है जितना मानव का अस्तित्व। ऋषि-मुनियों ने प्राकृत सत्ता में सभी प्राणियों को स्वीकार किया है और वैदिक काल से ही स्वस्थ्य रहने के लिए मानव देवों से प्रार्थना करता आया है। यथा -

वाऽम् असन् नसोः प्रायः चश्रुरक्षणोः श्रोतं कर्णयोः।
अपलिता केशा अशोणा दन्ता बहु बाहवोर्बलम्॥

अर्थात् देवों ने हमारी जो आयु निर्धारित की है उसे हम सब पूर्ण कर सकते हैं। जब मुख में वाणी हों, नासिक्य में प्राण हो, आँखों में देखने के लिए सामर्थ्य हो, कर्णेन्द्रियों में सुनने की क्षमता हो, बालों में पकने का दोष न हो, दन्त स्वच्छ और बाहुओं में बल बना रहे।

प्रदूषण के प्रकार:- वर्तमान में संसार का हर क्षेत्र प्रदूषण की समस्या से जूझ रहा है। जल, वायु, मृदा, ध्वनि आदि सभी प्रदूषण आज विकराल रूप धारण करती जा रही है, यहाँ तक अंतरिक्ष भी प्रदूषण के प्रकोप से अछूता नहीं रहा है। इसलिए वैदिकालीन मनुष्यों ने द्युलोक (आकाश या अंतरिक्ष) से लेकर व्यक्ति तक समस्त परिवेश के लिए प्रार्थना की है। शुक्ल यजुर्वेद में ऋषि प्रार्थना करते हैं कि - द्यौ शान्तिरन्तरिक्षः।

(1) वायु प्रदूषण:- आधुनिक युग में बढ़ता औद्योगिक विकास, याता-यात के साधन (वाहन) से निकलने वाला धुआँ और कचरे को जलाने से निकलने वाला धुआँ वायु प्रदूषण का मुख्य कारणों में से है, जिनके कारण आज मानव अनेक बीमारियों का शिकार हो रहा है। आज वायु प्रदूषण से जो हानियाँ बताई जाती हैं और वायु को शुद्ध रखने का जो महत्व बताया जाता है, [1,2] उसे ऋग्वेद ने एक-दो ऋचाओं में सूत्रबद्ध कर दिया है -

" वात आ वातु भेषजम्, स नो जीवात्वे कृधि।"

अर्थात् हे! वायु तुम स्वास्थ्य की औषधि बनकर बहो। तुम्हीं हमारी जीवन-जड़ी हो आदि। दशम मंडल का यह 186वाँ सूक्त वायु के जीवनदायी स्वरूप की विशद् विवेचन करता है।

शमन्तरिक्ष दुश्यनो अस्तु - अन्तरिक्ष धुआँ, धूल से मुक्त (स्वच्छ) रहे, जिसमें हम सब स्पष्ट देख सकें।

शनो भवित्र शमु अस्तु वायु - अन्तरिक्ष में कल्याणकारी हवा बहती रहे। **शं न दूषिपरो अभिवातु वात** - वायु एक स्थान पर बद्ध न होकर दूषिपर अर्थात् स्वच्छ रूप से दाएँ-बाएँ प्रवाहित होता रहे।

ना मेध्यं प्रक्षिपेदग्नौ - आग में किसी अपवित्र वस्तु का प्रक्षेपण नहीं करना चाहिए, अन्यथा वह वातावरण को भी दूषित कर देता है। इसलिए कहा गया है कि शुद्ध वायु है तो लम्बी आयु है।

अयं वायु सर्वेषां भूतानां मध्वस्य वायोः सर्वाणि भूतानि मधु - वायु समस्त जीवों का मधु है, समस्त जीव वायु के लिए मधु तुल्य है। सब कुछ आदि और अंत पर टिका है।[4,5]

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

(A Monthly, Peer Reviewed Online Journal)

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 5, Issue 9, September 2018

(2) जल प्रदूषण:- मानव शरीर का लगभग तीन चौथाई भाग जलीय अवयवों से निर्मित है। समस्त जीवधारियों के लिए जल ही जीवन है। ऋग्वेद में जल को विश्व का जन्म देने वाली श्रेष्ठ माँ कहा गया है -

मातृतमा विषस्य स्थातुर्जगतो जानित्री।

वृहदारण्यक उपनिषद् में कहा गया है - **इमा आपः सर्वेषां भूतानां मध्वासामपाँसर्वाणि भूतानि मधु।**यह जल समस्त प्राणियों के लिए अमृत है। जल में अग्नि का वास होता है अतः नग्न स्नान वर्जित था। पुराणों में ऐसी जानकारी दी गई है, जिनको किसी भी पवित्र नदी के किनारे नहीं करना चाहिए-

नाप्सु मूत्रपुरीषं कुर्यात् न निष्ठीवेत् न विवसनः स्नायात् गुह्यौ न इवोग्निः॥

गंगा को माँ का दर्जा दिया गया है और पावन व पवित्र मानी गई है। मनुस्मृति में मनु ने लिखा है - "किसी व्यक्ति को पानी में मल-मूत्र अथवा थूकना नहीं चाहिए, किसी भी वस्तु को या अपवित्र वस्तुओं रक्त, विष से मिश्रित जल को शुद्ध जल में नहीं डालना चाहिए।"

(3) ध्वनि प्रदूषण:- इसके लिए उर्दू शब्द शोर का प्रयोग किया जाता है। तीव्र ध्वनि सिरदर्द, अनिद्रा, तनाव आदि बीमारियों का मूल कारण है। आजकल किसी कार्यक्रम का आयोजन बिना ध्वनि विस्तारक यंत्र के सम्पन्न नहीं होता, जहाँ पर इन यंत्रों के बिना भी कार्य चल सकता है वहाँ भी इसका प्रयोग किया जाता है। यद्यपि संगीत देवोपासना का एक महत्वपूर्ण अंग है किन्तु खेद है कि आजकल ध्वनि के साधनों का दुरुपयोग हो रहा है। रेडियों, ट्रांजिस्टर, टेलीविजन, ध्वनि विस्तारक यंत्र, औद्योगिक संस्थान और वाहन की आवाज हमें बहरा बनाते जा रहे हैं। [6,7]वेदों में स्वास्थ्य की दृष्टि से तीक्ष्ण आवाज़ से बचने के लिए तथा आपसी वार्तालाप में धीमा और मधुर बोलने के लिए कहा गया है -

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत् भद्रया॥

अर्थात् भाई-भाई से बहन-बहन से द्वेष न करे। परिवार के सभी लोग एक मत व एक होकर आपस में शांति से भद्र पुरुषों के समान भद्रता से वार्तालाप करें। यहाँ ध्वनि में मधुरता की आशा व्यक्त है।

(4) मृदा (पृथ्वी) प्रदूषण:- प्रत्येक आस्थावान व्यक्ति आज भी पृथ्वी को माता तथा स्वयं को उसका पुत्र मानता है। ऋग्वेद के पृथ्वीसूक्त में कहा गया है:- माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः। खेद है कि भारत भूमि को माता मानने वाले लोग आज अपनी भूमि को ही प्रदूषित कर रहे हैं। औद्योगिक कचरे, मानव मल-मूत्र, प्लास्टिक (जो सड़ता-गलता नहीं) आदि सभी पर्यावरण को प्रदूषित कर रहे हैं। अतीत की ओर देखने से पता चलता है कि अनेक सभ्यताएँ अपने चरम सीमा पर आने के बाद किसी प्रकार से समाप्त हो गई। हड़प्पा संस्कृति के पतन का कारण में शहर व प्रदेशों के भूमि (मृदा) का बंजर होना बताया जाता है।
अथर्ववेद के पृथ्वीसूक्त के कुल 63 मंत्रों में पृथ्वी की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है। पृथ्वी के निर्माण के बारे में कहा गया है –

शिला भूमिरश्मा पांसुः सा भूमिः संघृता घृता।
तस्यै हिरण्यवक्षये पृथिव्या अकरं नमः॥

अर्थात् भूमि, चट्टान, पत्थर और मिट्टी है, मैं उसी हिरण्यगर्भा पृथ्वी के लिए स्वागत वचन बोलता हूँ।

प्रदूषण रोकथाम के उपाय:पर्यावरण प्रदूषण को रोकने के लिए वर्तमान में कई योजनाएँ बनाई गई हैं जिसमें नियम और कानूनी दण्ड भी शामिल है किन्तु फिर भी कोई ख़ासा परिणाम नहीं निकल सका।[8,9] भारतीय संस्कृति में मानव की ऐश्वर्यभोग की अभिलाषा को ही पर्यावरण प्रदूषण का कारण माना गया है -

सुखार्थमशुभं कृत्वा य एते भृषदुः खिताः।
आस्वादः स किमेतेषां करोति सुखमण्वपि॥

अर्थात् सुख (ऐश्वर्य) के लिए ही मनुष्य अशुभ कर्म (पर्यावरण ह्रास) करके मनुष्य नाना प्रकार के दुःख भोग रहे हैं, सुख तो अणुमात्र भी नहीं। इसलिए मानव मन की पवित्रता पर बल दिया गया है - **यतते मनसः शमे।** निर्मल मन और नैतिक नियमों के आचरण से पर्यावरण संरक्षण किया जा सकता है।
वायु प्रदूषण निवारण:-

(अ) वन संरक्षण:- वैदिक साहित्य में मनीषियों ने जगह-जगह पर वनों की वैशिष्ट्य का वर्णन किया है यथाः- **ततः शिव कुसुमित बालपादपः छायाफलादयर्थ वृक्षमाश्रयते जनः॥** अर्थात् वृक्ष सदा शिव होते हैं अतः फल एवं छाया के लिए लोगों द्वारा लगाये जाते हैं।

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

(A Monthly, Peer Reviewed Online Journal)

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 5, Issue 9, September 2018

महाभारत एवं रामायण में वृक्षों के प्रति मनोरम कल्पना की गई हैं (भीष्म पर्व में) - **सर्वकाम फलाः वृक्षाः।** वृक्ष का महत्व वैदिक साहित्य में बताया गया और वायु को शुद्ध करने में सहायक माना गया है। वैज्ञानिक पक्ष भी इसे स्वीकर करते हैं। वेदों में स्वीकार किया गया है - **नमो वृक्षेभ्यः**। मत्स्यपुराण में कहा गया है - **दसकूपसमावापी दसवापीसमोह्रदः दसह्रदसमः पुत्रो दसपुत्रोसमो द्रुमः**। अर्थात् दस कूप (कुआँ) के समान पुण्य एक वापी (पोखर) बनाने में, दस पोखरों का पुण्य एक तालाब बनाने में, दस तलाब का पुण्य एक पुत्र से तथा दस पुत्र के समान पुण्य एक वृक्ष लगाने से होता है।

(ब) यज्ञ:- प्राचीन समय में मान्यता रही है कि यज्ञ द्वारा ही वायु को शुद्ध किया जाता रहा है, यजुर्वेद में यज्ञों को पर्याप्त महत्व प्रदान किया गया है, [9,10]जिसका सीधा संबंध पर्यावरण शुद्धि से है। कभी-कभी पुराणों के महत्व को वेदों से अधिक माना गया हैः-

वेदार्थः दधिकंमन्य पुराणार्थ वरानने।
वेदाः प्रतिष्ठिताः सम्यक् पुराणे नात्र संशयः॥

यज्ञ की महत्ता को गीता में भगवान ने संकेत दिया है:-

अन्नाद्भवन्ति भूतानिपर्जन्यादन्नसम्भवः।
यज्ञात्भवति पर्जन्यों यज्ञः कर्म समुद्भवः॥

अर्थात् प्रदूषण से भूमि फलवित नहीं होती, सत्यविरोधी अधर्म आचरण से भूमि में अन्नादि नहीं फलते। यज्ञ में दी गई आहुति देवगण नहीं स्वीकारते। यज्ञाग्नि से धूम उत्पन्न होता है, जिससे बादल बनते हैं फिर वही बादल बरसात के रूप में पृथ्वी को हरा-भरा करते हैं।

वर्तमान में कारखाने से निकलने वाला धुआँ, वाहनों से निकलने वाला धुआँ, विभिन्न प्रकार की हानिकारक गैसें जिसका पर्यावरण पर दुष्प्रभाव पड़ता है, उसे नियंत्रित किया जाना अतिआवश्यक है।

जल संरक्षण:- जल है तो जीवन है। यह वाक्य हम सुनते आ रहे हैं। बच्चे के जन्म पर धर्माभिलाषियों के द्वारा जल स्त्रोतों का निर्माण कराये जाने का वर्णन प्राप्त होता है- **कूप्रपापुष्कारिणी वनानाम् चक्रुः क्रियास्तत्र च धर्मकामाः।** अर्थात् धर्माभिलाषी लोगों ने कुआँ, पोखर, तलाब, बनवाया। जगत्ताय प्रतप्तानां जलराशि च वाच्छतम्:- गर्मी एवं प्यास से व्याकुल जगत् के लिए जल अनिवार्य है। **इष्टं हि तर्ष प्रशमाय तोयः**- जल के बिना सृष्टि का जीवित रहना असंभव है। **जलं पर्युषित त्याज्यम्**:- प्यास शांत करने के लिए पवित्र जल इष्ट है।

ध्वनि प्रदूषण नियंत्रण:- वेदों मे कहा गया है कि मनुष्य को आचरण की मर्यादा निर्धारित करके ही ध्वनि का प्रयोग करना चाहिए अन्यथा असंयमित ध्वनि पर्यावरण प्रदूषण की सृष्टि करता है। एक अथर्ववैदिक ऋषि प्रार्थना करते हैं -

जिव्हाया उग्रे मधु में जिव्हामूले मधूकलम्।
ममेदह कृत्तावसो मम् चित्तमुषायसि॥

अर्थात् मेरी जिह्वा से मधुर स्वर निकले। भगवान का भजन, पूजन तथा कीर्तन करते समय मूल में मधुरता हो। मधुरता मेरे कर्म में निश्चयपूर्वक रहे तथा चित्त की मधुरता सदैव बनी रहे।

वर्तमान समय में ध्वनि विस्तारक यंत्रों पर नियंत्रण नितांत आवश्यक है, जिसके कारण हम बहरापन, सिरदर्द, अनिद्रा, तनाव आदि बीमारियों से ग्रसित हो रहे हैं। [7,8]

मृदा संरक्षण:- "जननी जन्मभमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" की भावना से आप्लावित प्रत्येक भारतीय इनके प्रति जीवन पर्यन्त कृतज्ञता से अभिभूत रहता है, क्योंकि हमारी पृथ्वी (धरती) को माँ का पद दिया गया है -

यस्यामन्न ब्रीहियवौ यस्या इमाः पञ्च कृष्टयः।
भूम्यै पर्जन्यपत्नयै नमोऽस्तु वर्षमेदसे॥

अर्थात् जिस भूमि में धान, गेहूँ, जौ आदि खाद्य पदार्थ प्रचुर मात्रा में होते हैं, जहाँ शूरवीर, व्यापारी, शिल्पकार तथा सेवक ये पाँच प्रकार के लोग सुखपूर्वक निवास करते हैं, जिस भूमि में निश्चित समय पर जल वृष्टि होकर अन्नादि उत्पन्न होता है, पर्जन्य से जिसका पोषण होता है, ऐसी मातृभूमि को हमारा नमन है।वर्तमान में मृदा संरक्षण बहुत आवश्यक हो गया है। औद्योगिक अपशिष्ट, प्लास्टिक आदि सभी भूमि की उर्वरता को ख़त्म करते जा रहे हैं, जिसका निवारण अतिआवश्यक है। [9]

निष्कर्ष

भारतीय संस्कृति में पर्यावरण संचेतना के विषय में मैंने विभिन्न प्रदूषण एवं निवारण की चर्चा की है, जिसमें वर्तमान की अपेक्षा वैदिक कालीन ऋषि-मुनियों की विचारधारा मानव हित में रहा है जो भारतीय संस्कृति की विशेषता रही है। वैदिक मंत्रों में उल्लेख है -

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

(A Monthly, Peer Reviewed Online Journal)

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 5, Issue 9, September 2018

ऊँ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

अर्थात् मनुष्य अपनी इच्छाओं को वश में रखकर प्रकृति से उतना ही ग्रहण करें कि उसकी पूर्णता को क्षति न पहुँचे।इसलिए कहा गया है "वेदों की ओर लौटो" अथवा "प्रकृति की ओर वापस चलो।" यदि अभी हम प्रकृति के प्रति संवेदनशील नहीं बनेंगे तो हमारी संस्कृति एवं सभ्यता का विनाश निश्चित है। वसुधैव कुटुम्बकम् और सादा जीवन उच्च विचार वाला देश आज पाश्चात्य अवधारणा के वशीभूत होकर वसुधैव आपणम् और खाओ-पियो और मौज करो का शिकार हो गया है। आवश्यकता है पर्यावरणीय जागरूकता की। सन् 2000 में अर्थचार्टर कमीशन में पृथ्वी संकट पर तीन दिवसीय सम्मेलन हुआ, जिसमें दो दिन में 22 सूत्र छाँटे गए तथा सम्मेलन के आख़िरी दिन अथर्ववेद की पृथ्वीसूक्त की चर्चा की गई। यह बड़ी आश्चर्य की बात है कि वैज्ञानिकों ने जिन 22 सूत्रों की चर्चा की थी, वह पहले ही अथर्ववेद में उपलब्ध है। अतः आज पर्यावरण संकट से निपटने के लिए पूरी दुनिया को आधुनिक उपायों के साथ वैदिक दर्शन की भी महत्ती आवश्यकता है, तभी हमारी भारतीय संस्कृति और सभ्यता सदैव आयुष्मान रहेगी।[10]

संदर्भ

1. प्राचीन भारत में पर्यावरण (एक ऐतहासिक अध्ययन गुप्तकाल से पूर्वमध्य युग), शोधप्रबंध, डॉ. मृदुला चौधरी, गयाघाट वाराणसी, पृष्ठ- 1
2. महाकवि कालिदास की शकुन्तला और पर्यावरण (आलेख), उर्मिला श्रीवास्तव), पृष्ठ-335
3. संस्कृत साहित्य में पर्यावरण चेतना के संदर्भ में आधुनिक कवि डॉ. राधेश्याम गंगवार के साहित्य का विवेचन, (आलेख), पिंकी तिवारी, 3 मार्च 2016, पृष्ठ- 86-88
4. पर्यावरण और प्रदूषण, डॉ. अरुण रघुवंशी, पृष्ठ- 1,25,44 से
5. ऋग्वेद, 1/90/6-8, यजुर्वेद, 13/27-29
6. पर्यावरण प्रभूत्वम् संस्कृत साहित्य एवं पर्यावरण, पृष्ठ-335
7. मनुस्मृति 4/56
8. संस्कृत साहित्य और पर्यावरण सुधार(आलेख), डॉ. रामहेत गौतम, 17 मार्च 2014, पृष्ठ- 21-24
9. संस्कृत साहित्य में पर्यावरण (आलेख), वीरराघव खण्डूडी, राजकीय स्नातक महाविद्यालय, उत्तरकाशी, 2017, पृष्ठ- 157 से 160
10. वैदिक साहित्य में पर्यावरण चेतना, रेनूसिंह (आलेख), गोरखपुर, 2015, पृष्ठ- 04 से 06